विश्व सन्दर्भ में प्रगतिवादी काव्यधारा एवं आशय

डॉ. रामचन्द्र मालवीय
हिन्दी विभाग, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत.

शोध सारांश

प्रगतिवाद विषयक काव्य और कला के मार्क्सवादी चिंतन भले ही मार्क्स की तद्विषयक मान्यताओं के साथ माने जाते हों, किन्तु उनके पूर्व भी विश्व में कुछ ऐसे चिंतकों के प्रादुर्भाव हो चुके थे, जिनकी मान्यताओं ने इस प्रगतिवाद की आधार–भूमि का निर्माण किया। ऐसे चिंतकों में सेंटबोन टेन, टालस्टाय, बेलेन्सकी तथा चर्निशेस्की प्रमुख हैं। सेंट बोन तथा टेन फ्रान्स के उन चिंतकों में से हैं, जिनकी विचारधारा ने फ्रेन्च–साहित्य, अंग्रेजी–साहित्य और विश्व साहित्य को भी एक बडी सीमा तक प्रभावित किया। इनकी मान्यताओं के अनुसार कृति का मूल्यांकन करने के लिए उसके रचयिता के जीवन का अध्ययन भी आवश्यक है। अतः चिंतन की अधिकारिणी केवल वही कृति हो सकती है, जिसके रचयिता ने मानव–मन को समृद्ध किया हो, उसके ज्ञान–भंडार की अभिवृद्धि की हो और उसे एक कदम आगे बढ़ाया हो, जिसने अपनी विशिष्ट शैली में सबको सम्बोधित किया हो–एक ऐसी शैली में, जो सम्पूर्ण विश्व की शैली प्रतीत हो–जो किसी एक युग की भी शैली हो और युग–युग की भी। अतः विश्व सन्दर्भ में प्रगतिवादी काव्यधारा युग–युगीन हैं।

संसार के मूलाधार पंचभूत पदार्थ हैं। संसार के सभी दृश्य, सभी सूक्ष्म–स्थूल रूप पदार्थ से ही बने हैं। शरीर की परिचालिका शक्ति मस्तिष्क है और मस्तिष्क भी शरीर की अन्य इन्दियों की भांति भौतिक हीं है। जगत् की घटनाओं की इन्द्रियों पर प्रतिक्रिया होती है और इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एक कम्पन्न होता है। शरीर का वह सूक्ष्मतम अवयव मस्तिष्क कहलाता है। आत्मा को मस्तिष्क के आगे की एक विकसित अवस्था मात्र मान सकते हैं। यह स्वभाव से ही गतिशील है। इसमें गति उत्पन्न करने के लिए वहम की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह तो पदार्थ के अन्तर्गत वर्तमान विरोधी तत्वों के सतत् संघर्ष का सहज परिणाम है। विरोधी शक्तियाँ जो स्वयं वस्तु में वर्तमान रहती हैं, उनके संघर्ष या द्वन्द्व का अध्ययन करते हुए जीवन–विकास का अध्ययन करना ही "द्वन्द्वात्मक प्रणाली" है। अतः द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह दर्शन है जिसके अनुसार जीवन एक ऐसी प्रगतिशील भौतिक वास्तविकता है, जिसके मूल में विश्व शक्तियों का संघर्ष चल रहा है।"[1] इस प्रकार की स्थितियों से निर्मित साहित्य को प्रगतिवादी कहा गया है।

"साहित्य का मूल सामाजिक शक्तियाँ हैं"[2] साहित्यकार अपने युग, अपने समाज और विश्व परिस्थितियों का एक प्राणी है, जिनमें उसका जन्म हुआ है। इस दृष्टि से वे जाति परिवृत्ति और युग को साहित्य की प्रधान प्रेरणा–शक्ति मानते हैं।"[3] अतः उन भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों का भी बहुत महत्व है, जिनमें किसी साहित्यकार और उसके माध्यम से किसी "साहित्यिक कृति का निर्माण हुआ। साहित्यिक कृति "परिस्थितियों की देन" है।" [4]

19वीं सदी में एक दूसरी विचारधारा भी गतिशील रही जो समाजोन्मुख यथार्थवाद की भूमिका पर आधारित थी। टालस्टाय इस धारा के उन्नायक थे। उन्होंने तत्कालीन "कला, कला के लिए" सिद्धान्त की निरर्थकता प्रमाणित करते हुए कला और साहित्य का जन–जीवन से अभिन्न सम्बन्ध स्वीकार किया। वे कला को केवल भोग और भावना की वस्तु न मानकर उदात्त सृजन और लोक–उत्थानकारी साधन मानते हैं। उनके अनुसार "कला–चिंतन जीवन के उदात्त, श्रेष्ठ और विश्व सन्दर्भों का आकलन है और कला मानव के सार्वभौमिक बन्धुत्व की प्रसारक है।" [5] अतः पूर्ण कलाकृति वह है, जिसकी विचारवस्तु सब व्यक्तियों के लिए महत्वपूर्ण और सार्थक हो। अपनी रचना के साथ कलाकार का सम्बन्ध पूर्णतः निष्ठापूर्ण और मार्मिक होगा और इसीलिए सत्य भी।" [6] साहित्य की बोधगम्य स्थिति से स्पष्ट है कि टॉलस्टाय ने काव्य को आदर्शोन्मुख समाजवादी, काव्यधारा– की ओर प्रवृत्त किया, वहाँ रूस के बेलिन्सकी ने काव्य और कला के चिंतन क्षेत्र में यथार्थवादी आलोचनात्मक दृष्टि की स्थापना की। उन्होंने साहित्य–समीक्षा में जिन क्रान्तिकारी आदर्शों का सूत्रपात किया वे मार्क्सवादी विचारधारा के प्रवर्तन की दृष्टि से भी अत्यन्त मूल्यवान हैं। उनका रूप सोवियत भौतिकवाद के आदर्शों को ग्रहण करने के पश्चात् बदल गया और पूर्णरूपेण प्रगतिशील आदर्शों के अनुकूल मान्य हुआ। यही धारा बाद में प्रगतिवादी काव्यधारा कहलाई।

यथार्थता के सम्बन्ध में कहा गया कि "यथार्थता" आधुनिक काल का चरम सूत्र है। तथ्यों में, अर्थों में, विश्वासों में, मानसिक निष्कर्षों में, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक स्थान में यथार्थता ही हमारे युग का प्रथम और अंतिम स्वर है।" [7] स्पष्ट है कि "यथार्थ" को ही साहित्य और कला का मापदण्ड माना गया। विद्वानों के मतानुसार "विषय को उसकी सम्पूर्ण यथार्थता के साथ पकड़ने और उसमें जीवन की साँस फूंकने में ही कलाकार की शक्ति, संतोष, विजय और गर्व निहित है।" [8] प्रकृति के सार्वभौम जीवन को शब्दों, ध्वनियों, रेखाओं और रंगो में चित्रित करना ही कला का उद्देश्य रहा। अतः यही कला की एकमात्र विषयवस्तु है। कविता संभावना के रूप में यथार्थता का रूपात्मक अंकन है। इस मान्यता के अनुसार यथार्थ से युक्त वस्तु ही कविता का विषय हो सकती है। विश्व स्तर पर बेलेन्सकी प्रथम चिंतक हैं, जिन्होंने काव्य और कला के क्षेत्र में यथार्थ का इतना अधिक महत्व प्रतिपादित किया था। उन्होंने कहा "यथार्थ धरती से उद्भूत होता है और प्रत्येक यथार्थ की धरती समाज है।" [9] उन्होंने अपनी कृतियों में यथार्थ और समाज को जो इतना अधिक महत्व प्रदान किया, उससे सोवियत जनता ने प्रेरणा ग्रहण की और उसे सामन्तवादी समाज–व्यवस्था से मुक्त होने के लिए संघर्षरत होने में बल मिला। चर्निशेवस्की ने आदर्शवादी सौन्दर्य–सिद्धान्तों का खण्डन कर बेलिन्स्की के यथार्थवादी सिद्धान्तों का समर्थन करते हुए कहा कि "शुद्ध कला का उद्देश्य जनता की

भावनाओं, जनता की संभावनाओं को सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों से जोड़ ऐसी दिशा में प्रवृत्त करना है, जिसे विश्व की वास्तविकता का समर्थन हो जाना कहते हैं। सार्थक उड़ान न केवल वैज्ञानिक की दृष्टि से वरन कला की दृष्टि से भी मान्य है।" [10] इस कथन से स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में यथार्थ युक्त काव्य–सौन्दर्य सार्थक है। वे ऐसे काव्य–सौन्दर्य के समर्थक हैं, जो समाज के यथार्थ पर आधारित हो और समाज को प्रगति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देने में समर्थ हो।

प्रगतिवाद से आशय उस वाद से है जिसे मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के रूप में ग्रहण किया है। मारिस कार्नफोर्थ ने लिखा है "भौतिकवाद का अर्थ एक ऐसा दृष्टिकोण है, जो भौतिक मानव जगत् घटनाओं की व्याख्या भौतिक तत्वों के ही आधार पर करता है।" [11] स्पष्ट है कि भौतिक जगत् से पृथक किसी अन्य सत्ता का अस्तित्व वे स्वीकार नहीं करते। उन्नीसवीं सदी में जर्मनी के सुप्रसिद्ध विचारक फावरबाख ने भी पदार्थ को प्रमुख आधार मानकर भौतिक जीवन की व्याख्या की, किन्तु उनकी इस व्याख्या में "भाववाद" की भी परोक्ष स्वीकृति मिलती है। उन्होंने विश्व और नैतिकता की जो व्याख्या की है, उसमें मॉरिसकार्नफोर्स की मान्यता के साथ भाववाद का समन्वय भी है। इसे फावरबाख के निष्कर्षों और हेगेल की द्वन्द्वात्मक विचारधारा का एक समन्वित रूप कहा जा सकता है। 19वीं सदी के प्रथम चरण में जर्मनी के दार्शनिक विद्वान हेगेल ने द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया पर विचार करते हुए कहा था कि "जब किसी धारणा पर तार्किक प्रणाली से विचार करते हैं, तब उसके निषेध पक्ष के क्षेत्र में स्वभावतः पहुंच जाते हैं और उस निषेध से ही एक ऐसी विचारधारा का जन्म होता है, जो वस्तु–वस्तु की दृष्टि से पूर्वापेक्षा अधिक सम्पन्न होती है।" [12]

मार्क्स ने अपनी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता में कहा है कि "मेरी द्वन्द्वात्मक प्रणाली हेगेलियन प्रणाली से है जो मानव मस्तिष्क की जीवन–प्रक्रिया के स्वतंत्र विषय है। इसके विपरीत विचार कुछ नहीं, पर मानव मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित तथा विचार के रूप में अनुदित भौतिक जगत् ही है।" [13] इस कथन से स्पष्ट है कि हीगेल, "विचार" को ही सत्य मानते हैं। इसके विपरीत मार्क्स वस्तु को सत्य और विचार को उसी का अनुदित रूप मानते हैं। ऐंजिल्स की दृष्टि में "इन्द्रियातित परिलक्षित चेतना प्रत्यक्ष जगत् का ही परिणाम है। आत्मा मूल तत्व का एक विकसित और अर्न्तहित रूप है।" [14] यह वस्तु का अर्न्तनिहित द्वन्द्व ही गति की मूल प्रेरणा है। यही भौतिक जगत् के द्वन्द्व अथवा संघर्ष का क्रम होता है। यही "द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद" का स्वरूप है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस विषयक दृष्टि महत्वपूर्ण है। उनकी दृष्टि में निरूद्देश्य और केवल कला–प्रदर्शन के लिए रचित साहित्य का कोई मूल्य नहीं है। मानव को केन्द्र बनाकर मानवता के उन्नयन के उद्देश्य से रचित साहित्य को ही वे वास्तविक अर्थ में साहित्य मानते हैं। "प्रगतिवाद मानवतावादी दृष्टि ही परिचायक है एवं मानवतावाद के ही मूल में समष्टि मानव की शोषण–मुक्ति का लक्ष्य है।" [15] प्रगतिवादी की दृष्टि से "साहित्य सामाजिक कर्म–विधान का एक सक्रिय अंग है। अतएव उस समाज–व्यवस्था के संरक्षण में सक्रिय योगदान देना चाहिए। हमारे समाज की जाग्रत शक्तियाँ वे लोग हैं, जो अब तक शोषित और दलित रहे हैं। प्रगतिवादी साहित्य उनकी सहायता करता है, उनके पक्ष में आन्दोलन करता है, उनकी शक्ति को संगठित करता है, उनकी पीड़ा को मुखर करता है और उन पर होने वाले अत्याचार का तीव्र विरोध करता है।" [16] अतः प्रगतिवादी दृष्टि रो साहित्य मुख्यतः सामाजिक और सामूहिक चेतना के लिए होना चाहिए। प्रगतिशील भावनाएँ सामाजिक भावना है, व्यक्तिगत नहीं, वह सौन्दर्य को अपने हृदय या दूसरे की आंखों में देखने की अपेक्षा सामाजिक संदर्भ में देखते हैं। प्रगतिवादी साहित्य का उद्देश्य अहं का समाजीकरण है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "दृष्टिकोण बदल जाने से आदर्शों और मूल्यों का बदल जाना अनिवार्य है। आज सत्य से तात्पर्य है भौतिक वास्तकिवता, शिव का अर्थ है भौतिक जीवन और सुन्दर का अर्थ है स्वाभाविक चेतना।" [17] तभी प्रगतिवाद ने अपनी अभिव्यक्ति के उपकरण आग्रह पूर्वक साधारण स्वस्थ जन जीवन से ग्रहण करना आरम्भ किया। "उनके काव्य चित्रों का आधार नित्य प्रति के व्यवहार है। उसकी अलंकरण–सामग्री स्थूल और प्राकृत है। प्रगतिवादी अभिव्यक्ति खरी, खड़ी और तीखी होती है–क्योंकि वह मुख्यतः आलोचनात्मक है।" [18]

डॉ. नगेन्द्र ने प्रगतिवादी काव्यधारा को जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण निरूपित करते हुए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, साम्यवाद, तथा राष्ट्रीय भावना को उसके मूल तत्व बतलाये हैं। वे प्रगतिवाद को मुख्यतः कार्ल मार्क्स से प्रभावित मानते हैं, पर अंशतः इस पर डार्विन और फ्रायड का भी प्रभाव स्वीकार करते हैं। "मार्क्सवाद एक नवीन और काफी स्वस्थ जीवन–दर्शन है, साहित्य पर उसके द्वारा नवीन प्रकाश पड़ रहा है, परन्तु उसकी उपादेयता, व्याख्या तक ही सीमित है, उसके द्वारा किया हुआ मूल्यांकन एकांगी होता है।" [19] प्रगतिशील आलोचकों की ऐसी प्रवृत्ति से उनके प्रयत्नों की सार्थकता के विषय में आशंका होने लगती है। साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन का लक्ष्य संघर्ष होना चाहिए। विश्व साहित्य में प्रगतिवादी चेतना और भावना की वृद्धि आवश्यक है। परन्तु "ये आलोचक अपनी सूझ की प्रगति को कहीं साहित्य में इतना आगे न बढ़ा दें की ऊष्णता की वृद्धि से साहित्य का संपूर्ण जल ही भाप बनकर उड जाये।" [20]

"प्रगतिवाद" अथवा "प्रगतिशील" शब्द का साहित्य के साथ प्रयोग केवल इसलिए आवश्यक नहीं है कि हमारे प्रगतिवादी साहित्यकार इसका प्रयोग और प्रचार करते आये हैं, बल्कि"इसलिए भी आवश्यक है कि आज भी जातीगत द्वेष, भाग्यवाद, निराशावाद, अनैतिकतावाद और शोषण का प्रचार करने वाले प्रतिक्रियावादी हीन साहित्य से उस श्रेष्ठ प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का अलगाव जाहिर कर रहे हैं, जो विश्व में मानवीय संवेदना सौन्दर्य–बोध, कर्म चेतना और तर्क–बुद्धि जगाता है, आशा का संचार करता है और अपने व्यक्तिगत जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उन्नत और नैतिक मानव बनाता है।"[21]

आज प्रगतिवादी काव्य के नाम पर देश को जो "आइडियोलॉजी" दी जा रही है वह सर्वथा विदेशी है, विजातीय है। हम ऐसी स्वाधीनता, ऐसी समानता लेकर क्या करेंगे, जिससे हमारी भारतीयता नष्ट हो जाए। "यदि ऐसा था तो ग्रीकों में अर्न्तभूत होकर, शकों में समा जाते, हूणों

में लीन होकर हम इतने उदास हो सकते थे कि, आज विश्व–सम्राट होते। किन्तु हमने सर्वदा अपने निजत्व की रक्षा की है। ठोकरें खायी हैं, पद दलित हुए हैं, पीसे गये हैं, किन्तु फिर–फिर हमारा विक्रम अर्जित हुआ है और हमने अपने को स्वायत्त बनाये रखा है, अपनी भारतीयता अक्षुण्ण रखी है।" [22]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रगतिवादी साहित्य अथवा काव्य के स्वरूप के संबंध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं, यहाँ तक कि अपने आपको प्रगतिवादी कहने वाले विद्वान भी दो दलों में विभाजित हैं। एक दल का नेतृत्व डॉ. रामविलास शर्मा करते रहे, जो मार्क्स की विशिष्ट मान्यता को लेकर रचित साहित्य को प्रगतिवादी साहित्य मानते रहे और दूसरे दल का नेतृत्व श्री शिवदान सिंह चौहान करते रहे।" अमृतराय, डॉ रागेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल आदि भी इन्हीं के साथ रहे, जो प्रगतिवादी साहित्य के स्वरूप में कार्ल मार्क्स की साहित्य विषयक मान्यताओं को स्वीकार तो करते हैं, किन्तु भारतीय प्रगतिवादी साहित्य को मार्क्स की सीमा से आगे बढ़कर भारतीय दृष्टि से भी समन्वित देखना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, वे मार्क्सवादी साहित्य का भारतीयकरण करने के समर्थक है। प्रथम प्रकार का साहित्य एक पार्टी विशेष की नीति से आबद्ध है और द्वितीय प्रकार का प्रगतिवादी साहित्य उन्मुक्त और उज्जवल भारतीय परम्पराओं और उन परम्पराओं में विकसित जन–जीवन से समबद्ध है। दोनों में एक समानता है–दोनों साम्राज्यवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, तथा भारतीय जन–जीवन को मान्य करने वाले रूढ़ीवाद के विरोधी हैं और दोनों एक ऐसे समाज की रचना करने के समर्थक हैं, जो वर्ग–भेद विहीन शोषण–विहीन, दरिद्रता के अभिशाप से मुक्त स्वतंत्र और जीवन की सम्पूर्ण सुविधाओं से युक्त हो। किन्तु इस प्रकार के समाज की रचना में दोनों की दो दृष्टि और दो विश्वास है। एक मार्क्सवादी मान्यताओं के अवतारण और प्रत्यक्षीकरण में ही विश्व समाज–रचना की कल्पना करते हैं और दूसरा मार्क्स की मान्यताओं को वहीं तक स्वीकार करना चाहते हैं, जहाँ तक वे उज्जवल विश्व परम्पराओं की रक्षा करते हुए विश्व जन–जीवन के उत्थान में सहायक हैं।

लेकिन प्रगतिवादी काव्यधारा के इस विषयक भारतीय सन्दर्भ में कहना चाहेंगे कि शाब्दिक रूप में प्रगतिवाद, प्रगतिवादी काव्य, प्रगतिशील काव्य, से हटकर प्रगतिवादी काव्यधारा का अर्थ व्यापक रूप में उस धारा से है जो हिन्दी काव्य में भारतेन्दु ने शुरू की थी। प्रगति काव्यधारा के कवियों ने मानवीय जीवन के यथार्थ पक्षों पर रचनायें रची, तभी उनकी रचनायें भारतीय जनमानस में रच–बस गई हैं। मनुष्य जीवन के यथार्थ पक्षों को उजागर कर कवियों ने मानवीय जीवन को श्रेष्ठ और सुन्दर बनाना अपने काव्य का लक्ष्य रखा। यही कारण है कि मानवीय जीवन के अनेक यथार्थ पक्षों की उपस्थिति प्रगतिवादी काव्यधारा में उपस्थित हुई है। कवियों ने समाज के पीड़ित और दलित वर्ग के जीवन का अंकन रचनाओं में किया, ताकि प्रगतिवादी काव्यधारा की रचनायें पढ़कर समझकर जनजीवन और शासन, दलित और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति पूर्वक कार्य कर उनकी उन्नति कर सके।

सन्दर्भ ग्रंथ

{1} डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ. 100.

{2} डॉ. शिवदान सिंह चौहान : आलोचना के सिद्धान्त, पृ. 124.

{3} एस. जेम्स : दे, डॉ. कृष्णलाल हंस : प्रगतिवादी साहित्य, पृ. .26.

{4} डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा : पाश्चात्य साहित्य लोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव, पृ. 142.

{5} दे. डॉ. रमेश नागर : यथार्थवाद की भूमिका, पृ. 44.

{6} डॉ. शिवदान सिंह चौहान : अलोचना के सिद्धान्त, पृ. 124.

{7} वही, पृ. 122.

{8} वही, पृ. 208.

{9} डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव : प्रगतिशील आलोचना, पृ. 141.

{10} एन.जी. चारनेस्की : दे. डॉ. कृष्णलाल हंस : प्रगतिवादी साहित्य, पृ. 28.

{11} मेरिस कार्ल फोर्स : दे. डॉ. कृष्णलाल हंस : प्रगतिवादी साहित्य, पृ. 29.

{12} ए. हिस्ट्री ऑफ मार्डन फिलास्फी, दे. डॉ. जगदीश द्विवेदी : यर्थाथवादी काव्य पृ. 109.

{13} सलेक्टेड वकर्स : कार्ल मार्क्स एण्ड एफ एंजिल्स, दे. अनुवाद –डॉ. सुधीर वर्मा पृ. 40.

{14} वही, पृ. 142.

{15} आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृ. 495.

{16} डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ. 66.

{17} वहीं, पृ. 101.

{18} वही, पृ. 102.

{19} वही, पृ. 103.

{20} यशपाल : बरगद की बेटी, पृ. 5.

{21} वही, पृ. 3.

{22} हंस : 1947 पृ. 45